जगत् का संचालक कौन?

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जगत् का संचालक कौन है? इस पर अनेक दृष्टि से विचार किया गया। कुछ लोगों का विचार है कि ईश्वर की इच्छा के बिना संसार का एक पत्ता भी नहीं हिलता। अर्थात ईश्वर ही जगत् का कर्ता, धर्ता और हर्ता है। जैन दर्शन की मान्यता इससे भिन्न है। जैन दर्शन जगत् को शाश्वत मानता है। जगत् स्वतः संचालित होता है। छः तत्व जगत् का संचालन करते हैं– धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव। जहां पर ये तत्व रहते हैं उसे लोक कहते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों का निवास स्थान यह जगत् है। नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के प्राणी यहां निवास करते हैं। इससे परे अलोक है। अलोक मोक्ष का स्थान है।

संसारी जीव और पुद्गलों के परस्पर प्रभावित करने वाले संयोग–वियोग से इस सृष्टि का महाचक्र स्वयमेव चल रहा है। इसके लिये किसी नियन्त्रक, व्यवस्थापक सुयोजक और निर्देशक की आवश्यकता नहीं है। चेतन अधिष्ठाता के बिना भी असंख्य भौतिक परिवर्तन स्वयमेव अपनी कारण सामग्री के अनुसार होते रहते हैं। इस स्वभावतः परिणामी द्रव्यों के महासमुदाय रूप जगत् को किसी ने सर्वप्रथम किसी समय चलाया हो, ऐसे काल की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिये इस जगत् को स्वयं सिद्ध और अनादि कहा जाता है।

इस जगत यन्त्र को चलाने के लिये न तो किसी चालक की आवश्यकता है और न इसके अन्तर्गत जीवों के पुण्य पाप का लेखा जोखा रखने वाले किसी महालेखक की और अच्छे–बुरे कर्मों का फल देने वाले और स्वर्ग या नरक भेजने वाले किसी महाप्रभु की ही। जो व्यक्ति शराब पीयेगा, उसका नशा तीव्र या मन्द रूप में व्यक्ति को अपने आप आयेगा ही। एक ईश्वर संसार के प्रत्येक अणु–परमाणु की क्रिया का संचालक बने और प्रत्येक जीव के अच्छे–बुरे कार्यों का भी स्वयं वही प्रेरक हो और फिर वही बैठकर संसारी जीवों के अच्छे बुरे कर्मों का न्याय करके उन्हें सुगति और दुर्गति में भेजे, उन्हें सुख–दुःख भोगने के लिये विवश करे, यह

कैसी क्रीडा है? दुराचार के लिये प्रेरणा भी वही दे, और दण्ड भी वही। यदि सचमुच कोई एक ऐसा नियन्ता है तो जगत् की विषम स्थिति के लिये मूलतः वही जवाब देय है। अतः इस भूल भूलैया के चक्र से निकलकर वस्तुस्वरूप की दृष्टि से ही जगत् का विवेचन करना होगा। यह जगत् स्वयं अपने परिणामी स्वभाव के कारण प्राप्त सामग्री के अनुसार परिवर्तमान है। जगत् तो अपनी गति से चला जा रहा है।

द्रव्यों के परिणमन कहीं चेतन से प्रभावित होते हैं, कहीं अचेतन से। इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। जब जैसी सामग्री प्रस्तुत होती है, तब वैसा परिणमन बन जाता है। परिणमन करने के लिये ईश्वर की आवश्यकता नहीं होती। कर्म स्वयं में शक्तिमान है। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाये तो कर्म ही ईश्वर है। अन्य दर्शनों में जो स्थान ईश्वर का है, जैन दर्शन में वहीं स्थान कर्म का है।

जैन दर्शन कर्म और कर्मफल के बीच में किसी तीसरी सत्ता को स्वीकार नहीं करता। जैनदर्शन के अनुसार कर्म अपना फल स्वयं प्रदान करता है। कर्मफल ईश्वराधीन है इस विषय पर जैनागमों और उपनिषदों में एकमत नहीं है। उपनिषदों के अनुसार मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, किन्तु उसका फल भोगने में स्वतन्त्र नहीं है, फल ईश्वराधीन है। ईश्वर की सर्वज्ञता और जीव के कर्माकर्मफल की नियामकता वैदिक धर्म में मान्य है। ईश्वर सम्पूर्ण जगत् की रचना करने वाला, सर्वज्ञ और स्वयं ही अपने को प्रगट करने का हेतु है। वह सभी गुणों का आगार और सर्वज्ञाता है। वह समस्त जीवों को, उनके कर्मों को और अनन्त ब्रह्माण्डों के भीतर तीनों कालों में घटित होने वाली छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी घटना का भलीभांति जानने वाला है।

ईश्वर प्रकृति और जीव समुदाय का स्वामी है तथा कर्म–कारण रूप में स्थित सत्त्व–रज और तम तीनों गुणों को नियंत्रित करता है। वही जन्म–मृत्यु रूप संसार चक्र में जीवों को उनके कर्मानुसार बांधकर रखता है। कर्म करना जीव के अपने अधीन है, किन्तु फल प्राप्त करना जीव के अधीन नहीं है, यह ईश्वराधीन है। ईश्वर को कर्माध्यक्ष भी कहा गया है अर्थात् ईश्वर ही सबके कर्मों का अधिष्ठाता–उनको कर्मानुसार फल देने वाला और समस्त प्राणियों का आश्रय है।

इस प्रकार एक ही प्रश्न का उत्तर जैनदर्शन और उपनिषद् दर्शन ने भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया है। उपनिषद् दर्शन में कर्म और कर्म फल के मध्य ईश्वर का विधान है, किन्तु जैन दर्शन में किसी तीसरी शक्ति की उपादेयता स्वीकार्य नहीं है। यहां मनुष्य कर्म करता है और कर्म का फल स्वयं प्राप्त करता है। आत्मा ही कर्मों का कर्त्ता है, इसलिये बन्ध आत्मकृत है। आत्मा ही कर्मों का विकर्त्ता है, इसलिये मोक्ष भी आत्मकृत है। आत्मा का कर्त्तृत्व सर्व–सम्मत है। यदि ईश्वर कर्त्तृत्व को स्वीकार किया जाय तो आत्मकर्त्तृत्त्व का हनन होता है। इसलिये जैन दर्शन के अनुसार आत्मा ही अपने सुख–दुःख का कर्त्ता, भोक्ता है। आत्मा ही अपने कर्मों का बंधन करता है, आत्मा ही उन बन्धनों को तोड़ता है अतः आत्मा ही सर्वशक्तिमान् है।